Review Of Research ORIGINAL ARTICLE ISSN:- 2249-894X

कटते पलाश : आदिवासी जीवन का मार्मिक विद्रोह

सारांश :

'कटते पलाश' डॉ. कला जोशी की एक ऐसी कहानी है जो सामयिक प्रश्नों को आदिवासी संदर्भ और नक्सलवाद की जड़ में प्रश्नों को टटोलती है। यह कहानी आदिवासी जीवन का मौन और मार्मिक विद्रोह है, अगर आज इसका जवाब नहीं ढूँढा गया तो यह एक विकराल समस्या के रूप में उभरकर आएगी कहीं ना कहीं आज का नक्सलवाद उनसे जुड़ता नजर आता हैं। मनुष्यता के लिए संघर्ष करना आदिम समाज प्रकारान्तर से कटते पलाश के 'देवा' के व्यक्तित्व के रूप में सत्ता और शक्ति के चक्र में पीसता नजर आता हैं।

स्नेह, सेवा स्वाभिमान, समर्पण और संघर्ष की पर्याय प्रोफेसर डॉ. कला जोशी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर बात करना सरलता, सहजता, सज्जनता और स्पष्टवादिता को पुनर्विवेचित करना हैं। ऐसे समय में जब उपर्युक्त सभी शब्द अपने मायने बदल चुके हैं, विद्वता विवेक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बल पर इस वसुधा पर कला की आग का अलाव निरंतर जलाने वाली वत्सलता की पर्याय डॉ. कला जोशी जीवन में सत्य और संवेदना को बड़ी आत्मीयता से स्वीकारती है। उनका कथा संग्रह कटते पलाश मनुष्यता के लिए संघर्ष कर रहा है और गरीब, पिछड़े, काले तबके के लोगों का सामने ला रहा है। उनकी कहानियों में अर्न्तमुखता के दर्शन होते हैं। कुछ कहानियां रोमांटिक और भावमूलक भी हैं। उन्होंने मानवीय भावनाओं का सूक्ष्म अंकन किया है और यह सूक्ष्म अंकन कहानी में गहराई से देखने पर उसका युगीन परिस्थितियों के साथ जुड़ा स्पष्ट रूप से दर्शाता है। उनके कथा संग्रह का कलात्मक विकास युगीन विशिष्टताओं को जोड़कर एक नए प्रकार की श्रेष्ठ कलात्मक कहानियों का निर्माण करता हैं।

कटते पलाश की प्रत्येक कहानी अनेक ऐसे गंभीर प्रश्नों पर है,

मनीषा सिंह मरकाम

सहायक प्राध्यापक – हिन्दी .

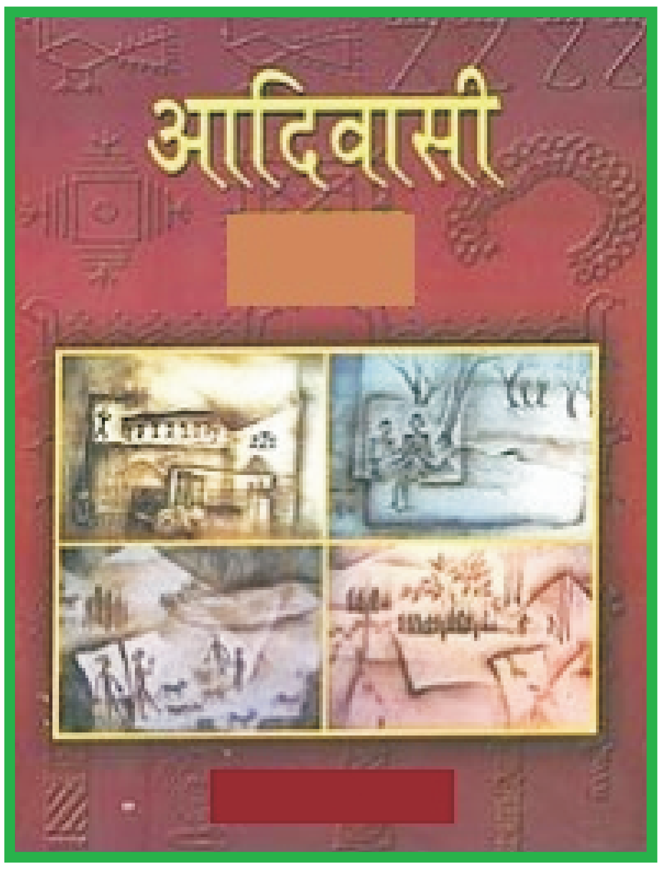

जिसको लेकर हमारे मन में विभ्रम बना हुआ हैं। इस कथा संग्रह के 'शब्द चिंतन' में इतनी तारतम्यता एवं पारस्परिकता है कि वह आगे जाकर जीवन दर्शन से परिणत हो जाता है। एक–एक शब्द मोती से भी बहुमूल्य गंभीर विचार और सजग बौद्धिकता का परिणाम है। इन कहानियों की सोच ऐसी है जिससे प्रत्येक व्यक्ति की सोच मिल सकती है बशर्ते दुराग्रह ना हो।

'कटते पलाश' में एक फर्क है, यह कहानी एक व्यक्ति या ईकाई की नहीं बल्कि आपदग्रस्त या मूल्यभ्रष्ट या कहें अपनी जीजिविषा का उद्गान करती दिशाहारा समय की नाटकीय स्थितियों और उनके बीच की मनोवृत्तियों की सामूहिक जुबान बनकर उपस्थित हुई है। यह क्रांतिकारी धर्म की स्थापना के लिए नहीं बल्कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन की पटरी से उतर चुकी गतियों–दुर्गतियों का बयान दर्ज करने जहां न भय हो न कायरता से मुक्त करने एवं कालान्तर से हो रहे आदिवासियों के प्रति अत्याचारों के प्रतिरोध में अपने बयान दर्ज करने का संदेहहीन, निष्पक्ष और ईमानदार प्रयास है।

प्रस्तावना :

रस्नेह, सेवा स्वाभिमान, समर्पण और संघर्ष की पर्याय प्रोफेसर डॉ. कला जोशी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर बात करना सरलता, सहजता, सज्जनता और स्पष्टवादिता को पुनर्विवेचित करना हैं। ऐसे समय में जब उपर्युक्त सभी शब्द अपने मायने बदल चुके हैं, विद्वता विवेक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बल पर इस वसुधा पर कला की आग का अलाव निरंतर जलाने वाली वत्सलता की पर्याय डॉ. कला जोशी जीवन में सत्य और संवेदना को बड़ी आत्मीयता से स्वीकारती है। उनका कथा संग्रह कटते पलाश मनुष्यता के लिए संघर्ष कर रहा है और गरीब, पिछड़े, काले तबके के लोगों का सामने ला रहा है। उनकी कहानियों में अर्न्तमुखता के दर्शन होते हैं। कुछ कहानियाँ रोमांटिक और भावमूलक भी हैं। उन्होंने मानवीय भावनाओं का सूक्ष्म अंकन किया है और यह सूक्ष्म अंकन कहानी में गहराई से देखने पर उसका युगीन परिस्थितियों के साथ जुड़ाव स्पष्ट रूप से दर्शाता है। उनके कथा संग्रह का कलात्मक विकास युगीन विशिष्टताओं को जोड़कर एक नए प्रकार की श्रेष्ठ कलात्मक कहानियों का निर्माण करता हैं।

कटते पलाश की प्रत्येक कहानी अनेक ऐसे गंभीर प्रश्नों पर है, जिसको लेकर हमारे मन में विभ्रम बना हुआ हैं। इस कथा संग्रह के 'शब्द चिंतन' में इतनी तारतम्यता एवं पारस्परिकता है कि वह आगे जाकर जीवन दर्शन से परिणत हो जाता है। एक–एक शब्द मोती से भी बहुमूल्य गंभीर विचार और सजग बौद्धिकता का परिणाम है। इन कहानियों की सोच ऐसी है जिससे प्रत्येक व्यक्ति की सोच मिल सकती है बशर्ते दुराग्रह ना हो।

डॉ. कला जोशी का मानना है कि साहित्य के क्षेत्र में बहुत बड़ा बदलाव आया है और इस बदलाव से सम्पन्न लेखकों के साहित्य का मकसद सम्पन्न पाठकों को संतुष्ट करना रह गया हैं। इनका मानना है कि एक अच्छे साहित्य सृजन के लिए वहां की सांस्कृतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि से जुड़ना आवश्यक है, वरना वह साहित्य अपनी ही शब्दावली और मुहावरों का गढ़ बनाकर सीमित हो जाएगा।

उनकी कहानी 'कटते पलाश' पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने अतीत के अनुभवों को अपनी लेखनी द्वारा समाज में ला रही हैं, यह कहानी समाज में होने वाले अत्याचारों, दुराचारों की प्रत्यक्ष गवाह है और परम्परावादी समाज पर गहरा प्रहार है। भारतीय वर्ण व्यवस्था के साँचे में हमेशा दलित समाज दबा रहा है, इनकी पहचान सदियों से यही है। 'नीच', 'अहम', 'पंचम', 'अछूत', 'असभ्य', 'कटते पलाश' एक छोटी सी कहानी है, किन्तु बड़ी मार्मिक इसमें जमींदारी संस्कृति को केन्द्र में रखा गया है। जो शोषण की कारक है और सामाजिक न्याय के रास्ते में बाधक है। इस कहानी में सर्वत्र ठाकुर के अत्याचार का आतंक है और जातिवाद की संत्रासना के कारण बेहद निराशा। नायक को जाति और धर्म के विषय में संदेह उत्पन्न हो गया है। उसके मन की भावना बिना कहे प्रकट होने लगी है और मानवपरक अर्थ खोजने का प्रयास कर रही है। उसे सफलता मिले या न मिले यह बात और है पर वह धार्मिक विसंगति सहने के लिए अभिषप्त है। 'वहीं पीपल के नीचे पड़े हुए एक जोड़ कप–बशी देखकर उन्हें लगा जैसे चाय में शक्कर नहीं कुनैन घोली जा रही है। मन कहने लगा देवा ठीक ही तो कहता है, उसके लिए बने कप–बशी होटल में नहीं पीपल के नीचे रखे जाते है। वह कितनी सहजता से कहा करता है कि कप–बशी बने तो सब एक ही मिट्टी के है, पर इनमें भी गांव सरीखी विरादरी, ऊँच–नीच होती है। उसकी जात के कप–बशी पीपल के नीचे रहते है, और दूसरी ऊँची जात के टेबल पर। शायद इसीलिये उसने चाय पीना छोड़ रखा है।'

सच्चाई से विलग होकर तटस्थ रहना सजग साहित्यकार की अंतरात्मा के लिए क्षम्य नहीं। इस कहानी में स्पष्ट विद्रोह मानव निर्मित जाति व्यवस्था से है, जिसके कठोर बंधनों के कारण अस्पृश्यता का अभिशाप भोगती मानवता एक रोटी के लिए तरसती रहती है। इसमें पीड़ित, शोषित और बार–बार अपमानित होने की आवाज है, अब साहित्यकार आत्मघात के लिए तैयार नहीं है, उनका मानना है कि जो दारूण पीड़ा, अपमान और शोषण वे सदियों से भोग रहे हैं अब इस भीषण स्थिति में उनके साथ सहभागी और सहयोगी बनने का अवसर आ गया हैं। उन्होंने लिखा है – 'अपने जैसे लोगों के दम पर वही इस गांव का सर्वेसर्वा हो गया है। अब तो भील भी उसके बुलावे में आने लगे। नीच आखिर नीच ही होते हैं। जूते पैर में ही अच्छे लगते है सिर पर नहीं। अगर यही हाल रहा तो सारा गांव दो हिस्सों में बँटकर रह जाएगा। बनिए, महाजन, बामन–ठाकुर का कोई महत्व ही नहीं रहेगा, ये ही लोग सब कर लेंगे।' यह कथन अत्यंत संवेदनशील है। परम्परागत शोषण की चक्की में ये लोग हमेशा पिसते हैं। इतने अत्याचार सहकर भी जब विद्रोही नहीं हो पाते तो फिर लेखिका को लिखना पड़ता है – उसने अपना हाथ बाघसिंह के हाथ, जो कि पलंग पर रखा था, पर रख मन को संतुष्ट करते हुए कहा 'हुआ कुछ भी नहीं, आज सुबह जब मैं आने को निकला तो पुलिया पर आते हुए ट्रक से बचने के लिए मेरी साइकिल गिट्टियों के ढेर पर चढ़ गई, जिससे मेरा संतुलन बिगड़ गया और मैं नाले में गिर पड़ा, इसके बाद क्या हुआ मुझे मालूम नहीं।'

सामाजिक आधार या व्यवहार के दोहरे मानदंड आज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आसानी से देखें जा सकते हैं। जीवन संवेदना सच्चाई से ऊपर उठकर तटस्थ हो जाने में नहीं, सच्चाईयों के भीतर तक झांककर उसकी अंतरगतता से संबद्ध हो जाने से ही निसृत होती है। क्योंकि सामयिक सच्चाई से साहित्यकार को न्याय करना ही होता है। बिना किसी अतिश्योक्ति के, बिना कोई रंग चढ़ाए यथार्थ की गहराई की ओर पाठकों को ले जाना यह साहित्यकार का अपना धर्म हैं। इस कहानी में नायक द्वारा जीवन भर की जाने वाली मेहनत और सच्चाई से लड़ते रहने के कारण प्रतिफल स्वरूप बारम्बरता हार खाते रहने के कारण 'देवा' का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व विकसित होने लगा, जिसके मूल में निरन्तर असुरक्षा बोध सक्रिय रहा है। लेखिका ने अपनी कहानी शिल्प कौशल में सैद्धांतिकता अख्तियार की हैं, बहुत सारी नाटकीय

भंगिमाएँ उन्हें इस समय प्रसंगानूकूल नहीं दिख रही हैं। कहानी में कलाबाजियाँ, तिलस्म, स्मृति स्वप्न दिखाना इस समय उनका उद्देश्य नहीं है। वर्तमान समय में जब कहानियाँ स्त्री, प्रेम, मृत्यु, अकेलेपन पर केन्द्रित है, वही 'कटते पलाश' में उपेक्षा तिरस्कार, अलगाव, ईर्ष्या आदिवासी पुरूष की अस्मिता पर अनेक प्रश्न महसूस करवाएँ है। इस कहानी में वर्तमान के प्रति करूण वेदनाएँ, और करूणा की ना कोई सीमा होती है ना ही कोई सम्प्रदाय वह सिर्फ मानव की मानवीयता संवेदनशीलता, सदाशयता और सद्गुगों के लिए कार्य करती हैं।

सभ्यता के विकास की शुरूआत से ही सत्ता और शक्ति का खेल रहा हैं। सत्ता है तो शक्ति भी है, और उसका उपयोग भी है। सत्ता और शक्ति का खेल समाज निरपेक्ष नही है, न ही नैतिकता से रहित। शक्ति का खेल समाज में शुरू होता है और फिर उसी के रास्ते सामाजिक नियम बनने शुरू हो जाते है। जब हम सत्ता और शक्ति के खेल पर विचार करते है तो दो बातें हमारे समक्ष उपस्थित होती है। एक दुनिया शक्तिमानो की है, ताकतवरों की है और दूसरी दुनिया शक्तिहीनो की, पर सिलसिला यहाँ से शुरू होता है कि जो शक्तिशाली है वह शक्तिहीन पर कब्जा करता है। पर यह प्रश्न भौतिक है, नैतिक नहीं और न ही कोई नैतिक नियम है कि शक्तिशाली ही शक्तिहीन और बेबस पर अपना शासन करे। कमी भी ऐसा समाज सफलतम समाज नहीं हो सकता तो नीतिरहित हो सत्ता की पूरी प्रक्रिया शक्ति और शक्तिहीन के बीच चलने वाली शोषण की सतत् प्रक्रिया हैं, जिसके पास सत्ता का केन्द्र है वह शक्तिहीन का शोषण करता है, उसे पीसता है, उसे अपमानित करता है, उसके श्रम का दुरूपयोग करता हैं। इसके विपरीत शोषक की हमेशा यह अकांक्षा रहती है कि वह अपने प्राकृतिक अधिकारो और जैविक अधिकारों के साथ जीवन जी सके। उसे कुछ खास नहीं चाहिए सिर्फ वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को ही पूारा करने में अपना जीवन व्यतीत कर देता हैं। उसे किसी महल, किले या अट्टालिकाओं की चाह नहीं हैं हालांकि हर किले–महल और आज के महलनुमा बंगले में उसका खून–पसीना लगा होता है। उसकी एक ही इच्छा सदैव प्रबल रहती है कि वह सम्मानपूर्वक अपने परिवार का भरण पोषण कर सके, पर हमारा सभ्य कहा जाने वाला समाज उससे पूरी गुलामी करा लेने के बाद भी उसे बनावटी सम्मान का सुख देने में भी बराबर अनाकानी करता रहता है। उसके सपनों को तोड़ता रहता हैं, ध्वस्त करता रहता है।

जबकि वह सिर्फ संघर्ष करते–करते जीना चाहता है पर जन साधारण वनवासी के प्रति किसी की कोई सामाजिक जिम्मेदारी नहीं है, कोई नैतिक बोध नहीं है, उसके प्रति कोई दोषी नहीं है। बल्कि जिसका जो अंतः करण बन जाता है, वह वैसी राजनीति 'देवा' के साथ खेल जाता है, इस पर भी उस भील आदिवासी की नीयति तो देखिए कि वह आवाक् सा सिर्फ बैठा ही रह जाता है – ''एक दिन देवा जमीन से बेदखल कर दिया गया। नजूल अधिकारियों का कहना था कि जमीन जिसे देवा जोत रहा है वह ठाकुर साहब की है। पटवारी ने इस जमीन पर कब्जा देवा को नहीं दिलवाया था। देवा ने दूसरी जमीन, जो ठाकुर साहब की है, उस पर कब्जा कर लिया है। यह अच्छी जमीन तो ठाकुर साहब की है, उसे तो बइड़ी की जमीन दी गई थी। उस पर कब्जा करने के बजाय उसने उनकी अच्छी जमीन पर कब्जा कर लिया था। इसीलिए देवा को उस जमीन से बेदखल कर दिया गया है।''

यहाँ लेखिका ने यह बात बहुत शिद्दत से सामने रखी है कि वनवासियों ने बार–बार हताशा भरी, पथराई आँखों से विनाशकारी दृश्य देखें है। पर उनकी पथराई आँखों और उन आँखों से देखे गए सपनों को कौन देखता है। उन सपनों पर चलना कौन चाहता है, सपनों को साकार होते भी कौन देखना चाहता है। इसीलिए तो शक्ति सम्पन्न लोग लगातार उन 'बेचारों' के सपनों को बंजर भूमि पर पटकते रहते है कि यो ही वे तड़प–तड़प कर, छटपटा कर मर जाए और हम सब बुद्धि सम्पन्न लोग उसकी मृत्यु को अकाल मौत के नाम दर्ज करा दें। बात यहीं पर समाप्त हो चुकी होती तो कोई बात नहीं थी पर आतंक इतना है कि एक भील कीड़े–मकोड़े की तरह ही है। यह एक बड़ी विडम्बना है। यहाँ संघर्ष में यह प्रश्न नहीं है कि 'मेरे रहते वह कैसे जिन्दा रह सकता है, बल्कि मेरे रहते वह कैसे जिन्दा है ?यही प्रश्न समाज को विनाश, खून–खराबा, मानव का मानव पर कब्जा की ओर खदेड़ कर ले जाएगा।'

'देवा' जो दिन–रात मेहनत करके अपना सबकुछ दांव पर लगाकर आज हारा हुआ बेहिचक विश्वासघात महसूस कर रहा था, विचारमग्न था कि हमेशा सम्पन्न लोगों द्वारा सहज भाव से हमारा शोषण। उसके अंर्तमन ने यह तय कर लिया था अब इनके किसी भी खेल को दृर्लक्ष्य नहीं किया जा सकता। इन्हें समझने के लिए भोली आँखों की जरूरत नहीं है और ना ही संवेदनशील मन और निगाहों की, बल्कि इन्हें तो इन्ही की तरह काइयां और शातिर आँख और दिमाग वाला आदमी ही समझ सकता है, जिसकी संवेदना और भाव बिल्कुल बनावटी हो। देवा के वैचारिक अंर्तद्वंद का सच इतना विध्वंसक, आक्रामक और सर्जनात्मक हो रहा था कि वह जान गया था कि समाज और समय पर किसी का भी एकाधिकार नहीं हो सकता। वह मान रहा था कि शक्ति सम्पन्न ही लगातार साधनहीन का शोषण करता रहता है, क्योंकि शोषण तंत्र पर आधारित सत्ता जीवित ही रहती है साधनहीनों, शक्तिहीनों के बल पर। उनके श्रम पर, उनके कर्म पर। वह आसमान की ओर देखकर मान रहा था कि हमें इतनी जकड़बंदी बाधित करती है कि हम हमेशा अधूरी जिंदगी, कच्ची सड़क के किनारे हाशिये पर रहते हुए जिए चले जाते है। एक अनसुनी खामोशी जो जीवन भर हमारा पीछा करती है और श्रम के बल पर सिर्फ हम किसी तरह पेट की भूख मिटा पाते है, और हमारे सपने हम इन लोगों की आँखों में तैरते रह जाते है – ''जब–जब शांति की बात होती है, आसमान में बैठा इबलिस (शैतान) हँसता रहता है। आज भी वह हँस रहा था। देवा, हाँ, देवराम, खेत की मेड़ पर खड़े पलाश के पेड़ के नीचे बैठा खामोश, उसके लाल–लाल फूलों को एक टक देख रहा था। रधिया ने फिर मास्टर गंगा सहाय ने और अंत में बाघसिंह उसके दोस्त ने उसे घर जाने के लिए खूब समझाया, परन्तु उसकी जबान को मानो लबवा मार गया हो। चुप बैठा रहा, पर नहीं लौटा।''

वह चुपचाप बैठा जीवन और जीवन के रहस्य को समझने की बड़ी प्रमुखता से कोशिश कर रहा था। वह

विचारशील था कि वर्तमान में श्रम के सौंदर्य को देखने की जिसे फुर्सत है, पर उसने ठान लिया था कि अब बदलाव जरूर आएगा कोई नया सबेरा होगा जो बिखरे कणों को संयोजित कर पूरी मानवता का विकास करेगा। 'देवा' का मन विद्रोह से लब्ध है। वह अब क्रांतिधर्मिता में संलग्न होना चाहता है। वह अब आत्म केन्द्रित न होकर संघर्षशील, जुझारू और परिवेशगत स्थिति पर अपना नियंत्रण रखना चाहता है। अब वह सहानुभूति नहीं, समझौता नहीं उर्ध्वात्मक गति चाहता है। उसके भीतर स्वतः ही एक नेतृत्व क्षमता जन्म लेती है। वह व्यवस्था को बदलने के लिए प्रतिबद्ध होना है। उसमें चाहे वह सफल हो चाहे विफल या उसे अन्य व्यवस्था में ढल कर उन रसातल में डूबे लोगों के लिए कार्य करना पड़े। वह अब एक ऐसी नेतृत्व शक्ति बनना चाहता है जो वंचित लोगों को वाणी दे सके।। जो निचले समाजों में क्षमता का विकास कर सके। और उन्हें वो ऐसी क्षमता प्रदान कर सके जो असंगतियों, अतिरेकों और अन्याय के प्रतिरोध का सशक्त माध्यम बन सके। प्रारंभ से लेकर अंत तक इतनी विपरीत, जटिल परिस्थिति होने के बावजूद भी वह अपने आत्म के इर्द–गिर्द घूमकर संघर्षशील अंर्तद्वंद करते हुए जुझारू व्यक्तित्व होते हुए भी उसका अपनी विषम परिस्थितियों पर नियंत्रण है कि वह सिर्फ प्रतिशोध की धारदार तलवार या कोई अन्य औजार नहीं बनना चाहता बल्कि सहिष्णुता का पैमाना उसके अंतर्मन में अंदर तक समाहित है। 'देवा' यह जानता है कि हमारे लिए सम्पन्न वर्ग कट्टरता की भूमिका ही अदा करता है। बिना स्पष्ट लक्ष्य, कड़ी मेहनत और गहरी लगन और जिद के सभी कुछ संभाल पाना संभव नहीं है। हमारा जीवन ही संघर्ष है और दूसरों की मदद करना हमारा असली काम है। और इस पर भी वे लोग हमारे प्रति सहृदय हो इसकी कोई गारंटी नहीं है। हमारी आस्था को तो कभी भी ठेंस पहुँचाई जा सकती है और हमारी भावना तो खैर छुई–मुई है ही। इतनी जटील और अबूझ परिस्थिति होते हुए भी उसने अपनी टेक को लेकर कभी समझौता मंजूर नहीं किया।

यहाँ लेखिका ने एक विचारशील सैद्धांतिकी रची है मूलभूत सुविधाएँ भी किसी व्यक्ति को उपलब्ध न कराना और विकास की बातें करना दोहरे चरित्र को दर्शाती हैं। यहाँ उन्होंने यह भी बतलाया है कि सामाजिक–राजनीतिक विकास की गति सदा उर्ध्वात्मक नहीं होती, आड़ी–तिरछी, अधोगामी, यथास्थितिवादी, अतीतोन्मुखी भी होती हैं। इसलिए कोशिश का स्वरूप भी हमेशा बदलता रहना चाहिए। यहाँ बगावती स्वरूप कुछ इस तरह से हैं – ''परंतु पंडित जी ने देखा इन शब्दों को बोलते वक्त उनके गले की समस्त नसें खींच गई थी। जिससे उनके गले में पड़ा चाँदी का ताबीज लगभग खड़ा हो गया था। उसका शरीर उत्तेजना से भर गया था और उसके घावो पर बंधी पट्टियाँ फिर लाल हो उठी। उसकी आंखें घायल हिंसक पशु सी दिखाई देने लगी और वह फिर बेहोश हो गया।''

वेदना को सहेलना और बदले में सिर्फ मंद स्मित और करूणा में डूबी दृष्टि देना क्या यही उस गरीब का हक हैं। इस कहसनी में निश्चित ही भाव बोध की शक्ति द्वारा आवेश युक्त होकर व्यक्ति की मानसिक प्रतिक्रियाओं का वैचारिक रूप विन्यास कर सर्जनात्मक स्थिति की विद्रोही परम्परा और कृत्रिम बंधनों के प्रति खुला विद्रोह ज्ञापित किया है। इस कहानी के नायक में स्मृति की एक आंतरिक आग भर दी है, एक आदिम अर्द्धबंजर पथरीली आग, इस आग के सामने एक बंजर जमीन है, एक बड़ड़ी है, एक ऊंची–नीची पथरीली जमीन है और रगड़ पर रगड़ खाया हुआ शरीर और भयंकर भयभीत वो अबोध आंखें हैं पर उसमें एक अनछुई चमक जो अद्भुत गांभीर्य लिए हुए है जिसमें उत्साह और धैर्य भरा पड़ा है। जिसने कई संकटों का सामना किया है जो कई बार अवसाद में डुब कर बाहर आया है, जिसने कई बार आत्मावलोकन और अकेलेपन की पीड़ा, यात्ना, तनाव, और संघर्ष झेले है।

जिसने जीवन से सीख लिया है तर्क, बौद्धिकता। अब उसका भोलेपन से मोह भंग हो गया है। अब उसकी स्मृति में मंथन चल रहा है। उन असुरक्षित वनवासियों का जिनका जीवन हर समय मृत्युभय को झेलता है जिनके जीवन में कोई राग नहीं है। कोई गुणात्मक परिणति के परिष्कार नहीं है। 'देवा' शिकायत भरे स्वर में जीवनानुभव बता रहा है कि अब उसकी आस्था कबंध होकर अनास्था के हिंसक पर बैठ गई है। यह सच है कि उसकी मनोभूमि में तनाव का वातावरण है। इस तनाव में द्वंद संघर्ष है, खिन्नता है, अवसाद है।

इस कहानी में अपना सबकुछ खो चुके वे वनवासी है जो वर्तमान में घायल सभ्यता और संस्कृति के शिकार है। यह कहानी उन समाजोन्मुखी लोगों पर व्यंग्य है जो अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए जातीय भेदभाव रखते है और जो भाव पद्धतियाँ, तारतम्यता, अंर्तयात्रा जीवन की सच्चाईयाँ इस कहानी में प्रयोग की गई है वह प्रबुद्ध समाज के लिए एक दर्पण हैं, एक आत्म साक्षात्कार हैं। इस कहानी में विचार के स्तर और सृजन के धरातल दोनों में ही द्वंद और समाज की स्थिति है। वनवासी समाज का जीवन सामाजिक अंतर्सम्बंधो, व्यक्तित्व की बनावट और उनके आत्मिक संसार का बड़ी पक्की समझ से निरूपण किया गया है।

वह उग्र हो गया है उसने तहसीलदार को साफ–साफ शब्दों में कह दिया कि ''यदि इन लोगों को मक्का नहीं दी गई तो मैं इतवार को हाट लुटवा दूँगा। वनवासियों की एकमात्र फसल मकका बिगड़ गई हैं, खाने को दाने नहीं, सरकार ने राहत कार्य खोले नहीं आखिर ये लोग जाये कहाँ ?अब तो इनकी औरतों के शरीर पर चाँदी का एक तार भी नहीं बचा है, साहूकार उधार देता नहीं है, सरकार सुन नही रही है। उसकी आवाज तेज होती जा रही थी।

यहाँ नायक का नेतृत्व किसी राजनीति में अपनी घुसपैठ करने के लिए नहीं था, बल्कि उसे हैरानी थी उन मठाधीशों के प्रति, मूर्धन्यो के प्रति, उन राजनायिकों के प्रति जो सामाजिक सुधार के लिए मुक्तिदायी आंदोलन के लिए प्रेरित है। परन्तु वे छोटे और कमजोर लोगों की दम तोड़ती भूख को मूक होकर देखते हैं। यहाँ पर नायक की नेतृत्व क्षमता में आक्रोश है, आग है, लावा है, गुस्सा है और इसके साथ–साथ संवेदना, मानवीयता और सब्र भी है। यही नहीं उसके मन में उत्कर लालसा भी है कि उसके समाज के प्रति भी लोग भाईचारे की भावना और समान व्यवहार रखें। संयम

और केन्द्र तो किसी भी परिवर्तन का केन्द्र बिन्दु होते है। उसे अपने अनुभव ने बताया है कि कट्टरता और हिंसा उसे सिरे तक नहीं पहुँचा सकती क्योंकि उसका उद्देश्य बड़ा है। वह कोई भीरू पुरूष नहीं है परन्तु सामाजिक सुधार के लिए, समाज की अस्मिता की रक्षा के लिए व्यक्तिगत त्याग जरूरी है। उसे अपने आसपास की सामाजिक, राजनीतिक परिवेशगत परिस्थितियों पर सूक्ष्म नजर है, यदि उसने एक कदम भी संभल कर नहीं उठाया तो वह राजनीतिक विकृतियों का शिकार हो जाएगा और उसका नेतृत्व कोई अन्य दिशा ले लेगा। इसलिए वह इस समय सहज सामान्य व्यवहार कर अपने भीतर की संभावनाएँ तलाश रहा है। उसे पता है कि मेरा सिर्फ सच कह देना कस्बे में एक खूनी संघर्ष की स्थिति को खड़ा कर सकता है। अगर मेरा भी विचार व्यक्तिगम हितों से घिरा हुआ है तो वह किसी काम का नहीं है। उस विचार से समाज का कोई भला नहीं हो सकता। समाज में परिवेश में कोई अप्रिय घटना ना हो इसके लिए मनुष्य को अपने सामाजिक सद्‌गुणों के साथ आगे आने की जरूरत है सामाजिक संवेदनशीलता और रचनात्मकता के साथ विकसित सद्‌गुण आज भी जरूरत है, जिसके कारण व्यक्ति से कोई कार्य गलत होने की संभावना नहीं रहती। यहाँ लेखिका के सृजनात्मक लेखन की एक बड़ी खूबी यह रही है कि उन्होंने ग्रामीण परिवेश में टोला गत एकता को अत्यंत आकर्षक ढंग से व्यक्ति के आक्रोश को प्रभावशाली और मनोवैज्ञानिक तरीके से एक रेखाचित्र खींच दिया है। उन्होंने इस अंश में ग्रामीण परिवेश और यहाँ के जीवन की केन्द्रिय चिंताओ को बिना किसी भावावेश या रूमानी आवरण के बहुत सहज और सादगी से इस कहानी में चित्रित किया है। ''तनाव प्रायः उन सभी के चेहरों पर था, परन्तु बाघसिंह उसके हाथ और गले की समूची नसें उभर आई थी। रस्सी उसने कंधे पर डाल रखी थी और हाथ की दो अंगुलियाँ उसमें फँसा रखी थी, दूसरे हाथ की कुल्हाडी पर पकड़ ज्यादा मजबूत थी, जिससे उसके दायें हाथ की सभी मांसपेशियाँ उभर आई थी। आँखे लाल–लाल हो रही थी। वह अपनी भाषा में पूछ रहा था देवा को किसने मारा ?पंडित जी उसे क्या जवाब देते उन्हें स्वयं को भी कुछ मालूम नहीं।''

इस कहानी में मौन की मुखरता प्रबल है। शब्दों का उछाल और व्याप्ति बेमिसाल है। संसार की विडंबनाएँ और मानव को मानव होने का अंर्तविरोध थोड़ी–थोड़ी देर में उद्‌घटित होकर सामने आता हैं। कहानी के पात्रो में कई भूली–बिसरी यादें है। लापता हो गए अनुभवों की सुध है किन्तु आत्मीयता को बड़ी गरमाहट के साथ दर्शाया गया है।

ग्रामीण जीवन में व्याप्त सामंती संस्कार, सामाजिक रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, सामाजिक विषमता, दीन–दशा, गरीबी, पिछड़ेपन और मेहनतकश आदमी के बहुरूपी शोषण को आदिवासियों की जीवन संस्कृति और समाज के ठेकेदारों और आधुनिक विकास से उपजी पीड़ा बयान करती है। आदिवासियों का जीवन सरल, निश्छल, भोला और सौम्य है, बेचारे गरीब है पर कपटी नहीं, मान रक्षा सर्वोच्च है। गिद्धवृत्ति भौतिकवादी समाज कमजोर–जीवित–आदिवासियों को छल से, बल से, या सुनहरे सपने दिखाकर उसकी बंजर, पथरीली और भूरी मिट्टी वाली जमीन भी मांस कं लोथड़े की तरह लूट लेते हैं और सदी के असुरों की तरह उन्हें गरीबी और भूख में तड़पने के लिए। ऐसी ही घटनाएँ विद्रोही चेतना की अनूगूंजे है। उन्हें तो नियति, पीड़ा, विक्षोभ और सार्वजनिक जीवन में व्याप्त आर्थिक शोषण, अन्याय और अव्यवस्था एवं गहरी बैचेनी ने डसा ही है, इसके उपरांत भी वे आदि है सभी के प्रति गहरी निष्ठा से नतमस्तक होने के लिए, विपत्तियों के लिए धीरज न खोने वाली सहनशीलता, साहस और आत्मविश्वास के लिए – ''गाँव की चौपाल से लेकर चौराहे तक इसी बात को फैलने में देर नहीं लगी कि ठाकुर साहब ने देवा से जमीन छिनवा ली और देवा आजकल भीलों के टापरों में रह रहा हैं।''

उल्लेखनीय है कि इस चिंता बैचेनी और इस बेदखली के बावजूद और ठाकुरगत किए गए कुठाराघात एवं अमानवीय और निकृष्ट व्यवहार के उपरांत भी वह इसे अपनी नियति नहीं मान लेता, बल्कि वह इन परिस्थितियों पर निरंतर संघर्ष करने की आवश्यकता पर बल देता है। सेठ–साहूकारों, जमींदारों–ठाकुरों की इसी रूग्ण मनोवृत्ति के कारण एक और जहाँ समाज में अमीर–गरीब, ऊँच–नीच और छूत–अछूत के अंतराल और अंर्तविरोध है, वहीं मानवीय श्रम और जीवन के ऊँचे आदर्शों के प्रति आम लोगों की आस्थाएँ भी क्षीणतर होती जाती है। अपनी कहानी में एक ओर ग्रामीण जीवन की इसी विडंबना और दूसरी ओर आदिवासियों की मेहनत और मनोवृत्ति का बहुत ही मनोवैज्ञानिक वर्णन बड़ी बारीकी और बेबाकी से किया है।

इस कथा का दूसरा पक्ष यह भी है कि दीन–दुखी शोषकों के शोषण से आहत होने के बावजूद और तन पर कहने के लिए मात्र एक लंगोटी और खाना भी ऐसा जो स्वयं के द्वारा ही पैदा किया हो। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इतर समाज से उसने कुछ भी ना लिया हो। उसने बहुत सीमित आवश्यकता में खुद को ढाल रखा हो फिर भी किसी अपराधबोध से लदा हो। 'देवा' का मन अब यह नहीं मान सकता है कि भूख, गरीबी, पिछड़ापन, अशिक्षा ही भीलों का गहना है, इन सबसे आगे आकर उसका दूसरा मन यह कहने लगा है कि अपने भीतर की कमजोरियों के कारण ही वह दबता रहा, गुलाम होता रहा, दरिद्र और अशिक्षित के रूप में ढलते–ढलते घटता रहा। उसकी स्थिति गूंगे के गुड़ की तरह हैं, पर यहाँ भी उसकी एक निस्वार्थ महान भावना जो गांव को जोडे रखने के लिए काम आती है कि शोषण से न्यस्त स्वार्थों की एक अधिक तिकड़मी और सशक्त–सक्षम राजनीति हमारे यहाँ बहुत समय से फल–फूल और बड़ रही है। वह आसानी से या जल्दी ही बेअसर या निस्तेज हो जाएगी यह सोचना है। उतनी ही मूर्खता हैं यह मानना कि वह हमेशा के लिए अपराजेय है। यदि उद्‌देश्य पर्याप्त और इच्छा प्रबल हो तो पर्याप्त रूप से किसी भी व्यक्ति में झुकाव आता है और उसकी धृष्टता समाप्त होती है। परिस्थितियाँ बदलती है और आप अप्रतिष्ठापित होते हैं। इसके पश्चात् ही निर्णायक स्थितियाँ प्रारम्भ होती है। ''ठाकुर सुजानसिंह स्वयं गांव के कुछ लोगों को साथ लेकर अस्पताल में आये और देवा को देखकर थानेदार से कहने लगे – थानेदार साहब आप उस ट्रक वाले को गिरफ्तार कीजिए, नालायक लोग सड़क को

अपने बाप की समझकर चाहे जैसे ट्रक को दौड़ाया करते हैं, उन्हें आदमी की जान की कोई चिंता नहीं हैं।''

देवा अपनी सारी अपर्याप्तताओ के बाबजूद भी आंतरिक रूप से सशक्त हैं। इस बात का प्रमाण कहानी में बार–बार मिलता है। कई जगह पर निरी भावुकता है, चाहे वह पंडित गंगासहाय और देवा हो या बाघसिंह और देवा हो अथवा रधिया और देवा हो, पर गहरे स्तर पर वह समझदार, शांत, संवेदनशील प्रतिरोध ही हैं। एक ऐसा प्रतिरोध जो सवर्णवादी–जातिवादी–नस्लवादी–धर्मवादी पूर्वाग्रहों के ऊपर उठना चाहता है। यह कहानी आदिवासियों की ऐसी सच्चाई है कि वह इस वृहत्तर सच्चाई में शिरकत करने और उसके प्रति जिम्मेदार होने का अत्यंत रून्धे स्वरों में न्यौता देती हैं। उसका भी नया जीवन एक उत्सव की भाँति हो, सभी प्रपंचों से मुक्ति हो, साहस गरिमा और न्याय हो। प्रतिरोध चालबाजी और प्रश्नवाचकता से आदिवासी जीवन मुक्त हो। कहानी जीवन में व्याप्त सच्चाई को गवाह बना कर लिखी गई है और मिथ्या प्रचलित फैशन और उसके गुर को शून्यता दी गई है। यह कहानी जीवन के मार्मिक अनुभवों की सबसे विदग्ध अनुभूति है, यह अनुभूति अपने अनगढ़ पात्रों द्वारा भी पाठकों को रिझाती और आकृष्ट करती हैं। इस कहानी का अत्यंत मार्मिक अंर्तकथन जो पंडित गंगासहाय देवा की अचेत अवस्था होते हुए उसके पलंग के पास खड़े हाकर सोचते है। यह कथन कहानी में अंतिम सच्चाई प्राणत्व का संचार करता है। ''बचपन में ठाकुरों की दया के अन्न से बना रक्त अब देवी की काया से निकल चुका है। अब वह उनका ऋणी नहीं रहा।''

कहानी का अंत सर्वथा मानवीय सच्चाई और उससे उत्पन्न जटिलता और सूक्ष्मता से होना चाहिए। दरअसल यह कहानी वह स्वतंत्र निगाह है जो न केवल लोकरस में डूबी हुई है बल्कि अपनी उन्मुक्तता, स्वच्छंदता और साहस के सौंदर्य रने मंडित भी है। इसमें जितनी नम्रता, कोमलता समर्पण है उतनी ही आत्मनिर्गमता आत्माभिमान भी है। इसमें एक ओर जमींदारों के बेखौफ विवेक और मुगालते लक्षित होते है तो एक अन्य पहल भी है साक्षर, दीक्षित, विद्या–निपुण पंडित जी जो चंद पढ़े–लिखे लोगों और अपढ़ लोगों के बीच रचनात्मक सामंजस्य स्थापित करने का कार्य गुरू होने के नाते स्वयं ही निर्द्वद होकर करते है एवं सबसे ईमानदार एवं खूबसूरत प्रयास पंडित जी द्वारा जड़–रूढ़ भावनाओं से ऊपर उठकर अधोपांत कया जाता है, पंडित जी में भारी छटपटाहट एवं वेदना है। उन पलड़ों के बीच जिन्हें वे भली भाँति जानते और समझते हैं, किसी एक को तो वे संयम तक बरतने की सलाह दे सकते हैं, पर किसी को वे यह भी नहीं कह सकते ही लोकाचार के दायरे में रहकर करें या अनावश्यक बेशरमी से गर्वोक्ति और दूसरों के बारे में कटूक्तियों से हमेशा संकोच होना चाहिए चूँकि पंडित जी स्वयं गुरू का दर्जा रखते हैं और गांव के बच्चों को उन्होंने पढ़ाया है और 'देवा' भी उनका विद्यार्थी रहा इसलिए वह उसका मनोविज्ञान जानते और समझते है। यही वजह है कि उन्हें डर है कि यदि सिर्फ दरदरी, भूरी, पथरीली, बीहड़ों में जमीन देकर बात समाप्त की गई और इनाम में उन्हें भूख पर भूख और भूख दी गई तो वह समय दूर नहीं की यहाँ भी एक नक्सली हिंसा का दौर शुरू हो जाएगा। वे आदिवासी विद्रोह के खतरों को भांप गए थे और विचारमग्न थे कि शोषण और पिछड़ेपन के कारण ही असंतोष बढ़ा हैं और ठाकुरों के शोषण रूपी उपकार एवज में देवा ने उन्हें अपने खून से सनी पट्टियां लौटाई है। अब बस हो गया, शाम हो गई और धूप का तीखापन भी हट गया। पर उजाला होगा और जिसमें साफ देखा और जाना जाएगा। फिर उनकी स्वाभाविक गति अंतर्भूत एक अनंत मौन में विलम होकर कहती है – ''पर उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि पलाश के लाल–लाल फूल उसके क्रोध के परिणाम हैं अन्यथा हँसी के। पलाश के नीचे बिखरे हुए उसके सूर्ख लाल फूल व्यर्थ नहीं जाते, वे देते हैं जन्म नन्हें–नन्हें पलाश के पौधों को।''

इस तरह से इस कहानी का अंतिम खंड लाता है हमारी झोली में एक अपरिमित सकारात्मकता, आकांक्षा, सुंदरता जो प्रेरित करती है, अपने कर्तव्य के प्रति कृतज्ञता और आक्रोश पैदा करती है, उस ह्रदयहीन व्यवहार के प्रति जातीय घृणा और भेदभाव के प्रति एवं हम जैसे बुद्धिजीवियों, शिक्षाविदों, समाजविज्ञानियों, राजनेताओं के लिए छोड़ देती है अनेकानेक प्रश्न जिसमें व्याप्त है शोषण, लूट, भ्रष्टाचार, बलात्कार।

'कटते पलाश' में एक फर्क है, यह कहानी एक व्यक्ति या ईकाई की नहीं बल्कि आपदग्रस्त या मूल्यभ्रष्ट या कहें अपनी जीजिविषा का उद्‌गान करती दिशाहारा समय की नाटकीय स्थितियों और उनके बीच की मनोवृत्तियों की सामूहिक जुबान बनकर उपस्थित हुई है। यह क्रांतिकारी धर्म की स्थापना के लिए नहीं बल्कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन की पटरी से उतर चुकी गतियों–दुर्गतियों का बयान दर्ज करने जहां न भय हो न कायरता से मुक्त करने एवं कालान्तर से हो रहे आदिवासियों के प्रति अत्याचारों के प्रतिरोध में अपने बयान दर्ज करने का संदेहहीन, निष्पक्ष और ईमानदार प्रयास है।